प्रकरण सात

झाँसी : भक्तों का संघ

"आवश्यकता है—किसी भी राष्ट्रीयता के अभ्यर्थियों की जो वस्तुतः सारे संसार में भगवद्गीता की शिक्षाओं का व्यावहारिक रूप से प्रचार करने के लिए सच्चे ब्राह्मण की योग्यता रखते हों। उपयुक्त अभ्यर्थियों के लिए निःशुल्क भोजन और आवास की व्यवस्था की जाएगी। आवेदन-पत्र भेजिए : ए. सी. भक्तिवेदान्त, संस्थापक एवं सचिव, भक्त-संघ, भारती भवन, डाकघर-झाँसी (यू. पी.)

—अभय चरण दे।

अभी बारह घंटे की यात्रा बाकी थी, बीच में दर्जनों स्टेशन थे। ट्रेन की खड़खड़ाहट और शोर-गुल तथा हिलने-डुलने के कारण कुछ लिखना कठिन था। लेकिन तीसरे दर्जे के अन्य यात्रियों की भीड़ के बीच लकड़ी की बेंच पर बैठे अभय लिखने में लगे रहे। धुँधले डिब्बे में यात्री एक दूसरे को संतोष से देख रहे थे और भागती ट्रेन की खिड़कियों से डिब्बे में गर्द और कालिख भर रही थी। बाहर नीरस बिखरे पत्थरों के भराव के आगे, लाइन के बगल की छिछली खाइयों में डंठलों पर नीले पुष्प खिल रहे थे। दूरी पर भैंसें और बैल चर रहे थे या कहीं-कहीं बैल अकेले किसान के आगे-आगे हल खींच रहे थे।

अभय झाँसी जा रहे थे—व्यवसाय के लिए नहीं, वरन् प्रचार के लिए। एक मास पहले, अक्तूबर १९५२ ई. में जब अभय व्यवसाय के सिलसिले में झाँसी गये थे, तो उनके एक ग्राहक श्रीमान् दुवे ने, जो झाँसी के एक अस्पताल के मालिक थे, उन्हें गीता मन्दिर में भाषण के लिए आमंत्रित किया था। झाँसी के बहुत से लोग धार्मिक और मानवतावादी चीजें पसन्द करते थे, चाहे वे वैष्णवों, थियोसोफिस्टों, मायावादियों, राजनीतिज्ञों या किसी से भी सम्बन्धित हों। वे किसी भी मार्ग को 'धर्म' मानते थे, जब तक कि उसमें कुछ

शिक्षाप्रद पवित्रता हो या जनकल्याण का रुझान हो। श्रीमान् दुबे ने *बैक टु गॉडहेड* के बहुत से अंक रुचि के साथ पढ़े थे और इसलिए उन्होंने अभय से भाषण के लिए प्रार्थना की थी। अभय बहुत उत्सुक थे। उन्हें शताधिक श्रोताओं में गहरी रुचि दिखाई दी थी। उनमें बहुत से स्थानीय आयुर्वेदिक कालेज के छात्र और स्नातक थे।

अभय की अवस्था छप्पन वर्ष की थी और कृष्णभावनामृत को उन्होंने जिस अधिकारपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया था, उससे झाँसी के धर्मोत्साही युवक बहुत प्रभावित हुए थे। पचीस वर्षीय प्रभाकर मिश्र को जो वेदान्त संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य और झाँसी आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय के हेड मेडिकल आफिसर थे, लगा कि अभय में कृष्णभावनामृत को प्रसारित करने की बहुत तीव्र आकांक्षा है। डॉ. मिश्र ने उन्हें गुरु की तरह स्वीकार किया, यद्यपि वे श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे। उन्होंने सोचा, "यह एक विनयशील व्यक्ति है, सचमुच एक साधु।"

छोटे कद के स्थूल डॉ. शास्त्री, जो आयुर्वेदिक डॉक्टर के रूप में अभी कार्य आरम्भ कर रहे थे, बड़े क्रियाशील नवयुवक थे। वे अभय की शुचिता और भारतीय संस्कृति के प्रचार हेतु एक विश्वव्यापी आन्दोलन चलाने की उनकी कल्पना पर मुग्ध थे। अवस्था-प्राप्त लोग भी, जैसे लम्बे, सौम्य रामचरण हयहरण मित्र, जो बर्तनों की दुकान चलाते थे, कविता लिखते थे और सफेद नेहरू-टोपी पहनते थे, अभय से भगवान् चैतन्य के बारे में और अधिक जानना चाहते थे। डॉ. मल्लिक, जो गीता मन्दिर के सचिव थे और विश्वविद्यालय के डॉ. सिद्धि, अपनी पत्नियों के साथ अभय के भाषण के बाद श्रद्धापूर्वक उनसे मिले थे और उनसे झाँसी पुनः आने की प्रार्थना की थी।

अभय उनके पास एक ओषधि-विक्रेता या पारिवारिक धंधों वाले व्यक्ति के रूप में नहीं आये थे, वरन् वे भगवान् चैतन्य महाप्रभु के एक भक्त के रूप में वहाँ गये थे। यद्यपि उनके श्रोताओं के लिए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती द्वारा वर्णित कृष्णभावनामृत के विशिष्ट अभ्यास नये थे, लेकिन वे उन्हें रुचिकर लगे और अभय जितना ही अधिक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की शिक्षाओं के बारे में बोलते जाते थे और कृष्ण के सन्देश को प्रसारित करने के विषय में अपनी अभिलाषाओं को व्यक्त करते थे, उतना ही अधिक उनके श्रोता उन्हें प्रोत्साहित करते थे। श्रोताओं में से बहुतों ने उन्हें सुझाव दिया कि वे अपने मिशन का संचालन झाँसी से करें और उन्होंने वादा किया कि वे उनकी सहायता करेंगे। डॉ. शास्त्री ने तो उन्हें अपने साथ रहने तक को आमंत्रित किया। उन्होंने कहा कि वे उनका परिचय प्रमुख नागरिकों से कराएँगे और झाँसी के विभिन्न सभा-स्थलों में उनके भाषणों का आयोजन करेंगे।

झाँसी में दस दिन रहने के बाद अभय इलाहाबाद लौट गये थे, लेकिन झाँसी की

स्मृति उन्हें व्यवसाय में मन नहीं लगाने देती थी। उनके दिमाग में व्यवसाय से अधिक महत्त्वपूर्ण चीज भरी थी : वह थी एक ऐसे भक्त-संघ की आवश्यकता जो संसार-भर में कृष्णभावनामृत की शिक्षाओं और आचारों का प्रचार करे। गौड़ीय मठ स्थायी रूप से टुकड़ों में विभाजित हो चुका था; उनके गुरुभाई भिन्न-भिन्न स्थानों में अपने निजी आश्रम चला रहे थे; प्रत्यक्ष रूप से वे किसी प्रकार के समझौते के प्रति उदासीन थे; इसलिए यदि सर्वव्यापी नास्तिकता के वातावरण को शुद्ध बनाना था, तो कुछ करना जरूरी था। जैसाकि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने कल्पना की थी, प्रचारकों के एक संघ का जन्म जरूरी था, जो संसार-भर में अपने कार्यकलाप फैलाए।

संसार के राष्ट्रों ने लीग आफ नेशन्स के माध्यम से एकता स्थापित करनी चाही थी, और हाल में वे यह कार्य युनाइटेड नेशन्स के माध्यम से कर रहे थे। लीग आफ नेशन्स असफल हो गई थी और युनाइटेड नेशन्स का भी वही हाल होगा, यदि वह यह मानकर नहीं चलता कि, क्योंकि सभी जीवों का परम भगवान् से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए आपस में सभी सच्ची आध्यात्मिक एकता और समता के सूत्र में बँधे हैं। ऐसी संस्थाओं से अभय को किसी लाभ की आशा नहीं थी। यद्यपि वे शान्ति और एकता चाहती थीं, लेकिन उनके प्रयत्न केवल नास्तिकता के एक और प्रतिरूप थे। शान्ति और एकता का सृजन तो केवल वैष्णवों का कर्तव्य था।

इसलिए अभय सोचा करते थे कि भक्तों के एक संघ की स्थापना के लिए संभाव्य स्थान कदाचित् झाँसी था। यह कोई बड़ा नगर नहीं था, लेकिन वहाँ के लोगों में कम से कम उसके प्रति रुचि थी। विद्यार्थियों ने उनकी बातें सुनीं थीं और स्वीकार की थीं और सहायता का वचन दिया था। अभय को लगा था कि उनकी सराहना में सच्चाई और गहराई का कुछ अभाव था और उसमें भावुकता अधिक थी। इसलिए उनकी निष्ठा में उन्हें सन्देह था। लेकिन यदि उन्हें कुछ या केवल एक भी निष्ठावान् व्यक्ति मिल गया, तो वे कार्य आरम्भ कर सकते थे। वे प्रचार करना चाहते थे—उनका वही ध्येय था। इसके अतिरिक्त अब वे वृद्ध हो रहे थे; यदि कुछ आरम्भ होना था, तो उसका वही समय था। इसलिए वे झाँसी पुन: जाएँगे और वहाँ अनिश्चित काल तक रुकेंगे। इलाहाबाद के मामलों की अधिक चिन्ता किये बिना ही उन्होंने दवाइयों का व्यवसाय अपने लड़के और भतीजे को सौंप दिया, इस सूचना के साथ कि उन्हें झाँसी जाना है।

• • •

जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँची, तो अभय ने डॉ. शास्त्री को उत्साहपूर्वक हाथ हिलाते हुए देखा। वे दोनो टाँगा से डॉ. शास्त्री के दवाखाने की ओर चले, और बातूनी अमितभाषी

डॉक्टर ने अभय को प्रवचन और साक्षात्कार के बहुत से अवसर देने के वादे किये। डॉ. शास्त्री ने झांसी के सम्बन्ध में जनश्रुति भी बताई कि वर्तमान झाँसी उस स्थान पर स्थित है, जो एक जंगल का भाग था, जहाँ आज से कई हजार वर्ष पहले भगवान् रामचन्द्र ने तपस्या की थी। वनवास काल में पाण्डव यहाँ रहे थे और तभी से बहुत से महान् वैदिक ऋषियों ने इस क्षेत्र में अपने आश्रम बनाए थे। झाँसी, एक भारतीय वीरांगना, लक्ष्मीबाई का भी घर रहा था, जिन्होंने उन्नीसवी सदी के मध्य में अंग्रेज शासन के विरुद्ध भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का आन्दोलन आरम्भ करने में भाग लिया था। घोड़े पर सवार ऊपर-उठे हाथ में तलवार लिए हुए लक्ष्मीबाई के चित्रों और मूर्तियों का प्रदर्शन पूरे नगर में दिखाई देता था। लेकिन १९५२ का झाँसी भीड़-पूरित दरिद्र नगर लगता था, जिसकी सड़कें गंदगी से भरी थीं और जो न्यूनतम प्रौद्योगिक सुविधाओं से रहित था।

• • •

डॉ. शास्त्री झाँसी के सिप्री बाजार में किराए के एक दो-मंजिले मकान में अकेले रहते थे। पहली मंजिल पर उनका दवाखाना था और ऊपर के एक कमरे में उनका आवास था, जिसमें अभय को उन्होंने अपने साथ रहने के लिए कहा। युवा, किन्तु प्रभावशाली डॉ. शास्त्री झांसी के गुण-ग्राही नागरिकों से अभय का परिचय कराने के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति थे और वे इस कार्य के लिए उत्सुक भी थे। घुमक्कड़ और उत्साही डॉ. शास्त्री का अपने नगर के लोगों के साथ खासा उठना-बैठना था। अभय के प्रति उनमें आदर था। अभय आयु में उनसे दुगने बड़े थे। वैष्णव विचारधारा और जीवन-पद्धति में पारंगत होने के कारण अभय की वे सराहना करते थे। डॉ. शास्त्री ने अभय की सहायता करना अपना कर्तव्य समझा और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक औरों से उनका परिचय कराया और उनके भाषणों की व्यवस्था कराई।

अभय और डॉ. शास्त्री परिवार के सदस्यों की तरह एक साथ भोजन बनाते और एक साथ खाते थे। अभय ने 'भक्त-संघ' विषयक अपना विचार प्रकट किया। इसका क्षेत्र विश्वव्यापी, किन्तु मुख्यालय झाँसी में होगा। उन्होंने कहा कि झाँसी के सभी नागरिकों को कृष्ण के सन्देश को फैलाने में सहायता करनी चाहिए। भगवान् चैतन्य ने कहा था कि भारतीयों का यह विशेष दायित्व है कि वे भगवत्-चेतना का प्रसार भारत और सारे संसार में करें।

डॉ. शास्त्री : *उनका हृदय बराबर इस विचार से दग्ध होता रहता कि सम्पूर्ण संसार भौतिकता में लिप्त है—हर एक खाने-पीने और मस्ती में व्यस्त है। इसलिए वे सारे दिन घूमते रहते और भगवान् चैतन्य और अपने गुरु महाराज के सन्देश का प्रचार करते रहते।*

अपने ध्येय के सम्बन्ध में वे लोहे के समान दृढ़-निश्चय और आत्म-विश्वासी थे। उनके मन में तनिक भी सन्देह नहीं था। वे दृढ़-व्रत थे। सचमुच वे सदैव प्रचार में लगे रहते : हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्ति एव नास्ति एव नास्ति एव गतिर् अन्यथा।—हरे कृष्ण नाम के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है। अस्तु, वे हमेशा चर्चा करते रहते, कभी-कभी रात भर मुझसे चर्चा करते। कभी-कभी मैं ऊब जाता। मैं प्रार्थना करता—"कृपया तंग न करें, कृपया मुझे सोने दें।" और वे—वृद्ध मिशनरी कार्यकर्ता—एक युवा पुरुष की तरह थे। मैं युवा लड़का था, और वे ठीक मेरे मित्र थे, मेरे अग्रज जैसे। वे मेरे मार्गदर्शक और शिक्षक जैसे थे—क्योंकि प्रचारक मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक तीनों होता है।

वे सदैव श्रीमद्भागवत और भगवद्गीता के माध्यम से अच्छे वातावरण की सृष्टि करने में लगे रहते थे। सम्पूर्ण भगवद्गीता उनके जीवन में चरितार्थ थी। उनका मिशन केवल प्रचार करने का नहीं था, वरन् व्यवहार में उसे चरितार्थ करना था। वे अपने मिशन के लिए मुझे पकड़ने की हरदम कोशिश में थे और मैं हरदम भाग निकलने की कोशिश में था। मैं नहीं सोच पाता था कि वे संसार में आध्यात्मिक क्रान्ति के लिए कोई आश्चर्यजनक बात कर सकेंगे, यद्यपि वे इसी बात पर हमेशा जोर देते थे।

जब डॉ. शास्त्री अपने दवाखाने में व्यस्त होते, तो अभय वहाँ बैठते और मरीजों से बात करते, कभी-कभी वे दवाओं के नुस्खे बताते, लेकिन अधिकतर प्रचार ही करते। अब झाँसी में रहकर प्रचार करने से वे सन्तुष्ट थे। वहाँ जीवन था—लोग उनके प्रचार के प्रति ग्रहणशील थे। हरे कृष्ण कीर्तन का उनका आग्रह वे स्वीकार करने लगे थे। हर वस्तु का त्यागकर, फल के लिए कृष्ण पर निर्भर रहते हुए दिन-रात प्रचार करने की उनकी अभिलाषा और संकल्प में वृद्धि हो रही थी।

वे नगर के विभिन्न कार्यक्रमों में नियमित रूप से भाषण और हरे कृष्ण का कीर्तन करने लगे। कभी-कभी एक ही दिन में कई कार्यक्रम हो जाते। रविवार को वे साधना मन्दिर में भाषण देते थे। किसी और दिन गीता मन्दिर में, किसी दूसरे दिन थियोसोफिकल सोसाइटी में, और नियमित रूप से लोगों के घरों में उनका भाषण होता था।

दुकानदार-कवि, श्रीमान् राममित्र, अपने घर के निकट एक शिवमन्दिर की देखभाल करते थे। अभय ने वहाँ कीर्तन करना और भाषण देना आरम्भ कर दिया। कभी-कभी श्रीमान् मित्र साधना मन्दिर में *भगवद्गीता* पर हिन्दी में भाषण करते थे और अभय वहाँ उपस्थित होते थे। कभी-कभी अभय श्रीमान् मित्र की बर्तनों की दुकान पर चले जाते थे। दुकान झाँसी के एक भीड़-भाड़ वाले बाजार में थी और जन-संकुल सड़क में खुलती थी। अभय एक सामान्य ग्राहक की तरह स्टेनलेस स्टील की बाल्टियों, प्लेटों, कटोरों और

लोटों के अंबारों के बीच बैठ जाते और श्रीमान् मित्र और दोस्तों से *श्रीचैतन्य-चरितामृत* के सम्बन्ध में बातें करते या कभी-कभी वे श्रीमान् मित्र से उनके प्रकाशित कविता-संग्रह और साहित्यिक ख्याति के विषय में सुनते।

श्रीमान् मित्र ने देखा कि अभय की महत्त्वाकांक्षा पूरे झाँसी नगर को कृष्णभावनामृत से जीवन्त बना देने की है। अभय ने *श्रीचैतन्य-चरितामृत* से उद्धरण दिया : "जो बड़े सौभाग्य से भारत वर्ष में उत्पन्न हुआ है, उसे अपना जीवन पूर्ण बनाना चाहिए और तब कृष्णभावनामृत का प्रसार करके दूसरों को लाभ पहुँचाना चाहिए।" अभय आगे कहते "श्रीमान् मित्र, सारा संसार हमारे आध्यात्मिक आन्दोलन की प्रतीक्षा कर रहा है।" श्रीमान् मित्र सिर हिला देते और उनके नेहरू के समान चेहरे पर मुस्कान छा जाती। लेकिन श्रीमान् मित्र ने देखा कि अभय चाहते थे कि लोग केवल उन्हें सुने ही नहीं, उससे कुछ अधिक करें—वे चाहते थे कि लोग कुछ करें।

एक बार श्रीमान् मित्र ने अपनी पुस्तक की एक प्रति अभय को भेंट की। उन्होंने एक विख्यात व्यक्ति द्वारा लिखी प्रस्तावना दिखाते हुए बार बार कहा कि महान् साधु विनोबा भावे ने कविताओं को बहुत पसन्द किया है। जब श्रीमान् मित्र को ज्ञात हुआ कि अभय नियमित रूप से दूध पीने वाले हैं, तो उन्होंने नित्य अपनी गाय का ताजा दूध उन्हें देना आरम्भ किया। उनकी गाय श्यामा थी (और श्रीमान् मित्र ने कहा कि श्यामा गाय का दूध विशेष रूप से अच्छा होता है)। अभय ने श्रीमान् मित्र को आसपास के गाँवों में प्रचार के लिए एक कीर्तन-दल के साथ पैदल जाने को आमंत्रित किया। लेकिन श्रीमान् मित्र ने इनकार कर दिया; वे अपनी दुकान देखने के लिए किसी को ढूंढ पाने में असमर्थ रहे।

डॉ. सिद्धि एक दूसरे युवा आयुर्वेदिक डॉक्टर थे, जिन्होंने तुरन्त कृष्णभावनामृत के प्रसार के लिए अभय की योजनाओं में रुचि दिखाई।

डॉ. सिद्धि : *वे मेरे स्थान पर कई बार आये। मेरे घर की छत पर एक कीर्तन-कक्ष है, और वे उसमें तथा गीता मन्दिर में कीर्तन करते। हम नित्य थियोसोफिकल सोसाइटी में भी जाते थे। जब कीर्तन, प्रवचन या भाषण होते, तब वातावरण बहुत शुद्ध, पवित्र और शान्त बन जाता था। वे हारमोनियम बजाते थे। लोगों से मिलने और प्रचार के लिए हम उनके साथ जाते थे। मुख्य काम कीर्तन करना और भगवद्गीता तथा कृष्ण के जीवन-चरित पर भाषण देना था। चैतन्य महाप्रभु उनके भगवान् थे और मैं भी उनसे प्रेम करता था।*

राधेलाल मल्लिक, जो गीता मन्दिर और साधना-मन्दिर के सचिव थे, अभय से प्रायः मिलने लगे थे।

राधेलाल मल्लिक : *मैं उनसे बहुत अधिक प्रभावित हुआ। उनके साहचर्य में मैं सवेरे प्रतिदिन तीन-चार घंटे बिताता। उनके पास बहुत से महान् धार्मिक ग्रंथ थे। श्री चैतन्य*

महाप्रभु से सम्बन्धित पुस्तकों के विषय में वे विशेष सजग थे। वे उस समय लिख भी रहे थे। गीता मन्दिर के अध्यक्ष और मैं, दोनों स्वेच्छा से उनका भोजन बनाते थे।

• • •

विशाल अंतिय जलाशय के उस ओर स्थित सुरम्य भारती भवन मन्दिर संकुल का पता उन्हें पहली बार तब लगा, जब वे राधेलाल मल्लिक के साथ सवेरे भ्रमण कर रहे थे। अंतिय ताल के नाम से विख्यात जलाशय के चारों ओर का वातावरण शान्त था, और वहाँ आबादी विरल थी। किन्तु यह सिप्री रोड के निकट था, जो झाँसी शहर और सिप्री बाजार का आम रास्ता था। अभय ने श्रीमान् मल्लिक से मन्दिर के बारे में पूछताछ की और वे दोनों मुख्य सड़क से मुड़कर एक ढालू पगडंडी पर चलने लगे, जो मन्दिर के अहाते के सिंहद्वार में प्रवेश करती थी।

वहाँ उन्होंने देखा कि नीम और आम के बाग से आच्छादित कई एकड़ जमीन खाली पड़ी है। मुख्य भवन राधा-स्मारक था। वह एक चैपेल (प्रार्थनालय) की तरह छोटा था। परन्तु उसके अंगों के अनुपात सुस्पष्ट और मजबूत थे। अष्ट भुजाकार पत्थर के आधार पर निर्मित वह तराशे हुए लाल और श्वेत संगमरमर के आठ अलंकृत स्तम्भों पर खड़ा था, उसके सिर पर पत्थर का गुम्बद था। भाग्य की देवी लक्ष्मी को अपने ऊपर उठे सूंडों पर धारण करने वाले दो हाथी प्रवेश-द्वार की शोभा बढ़ा रहे थे। पत्थर में बने ध्वजपट और लाल, हरी और नीली धारियों वाली आकृतियों से स्मारक के अलंकरण-युक्त किन्तु भारीपन के प्रभाव में वृद्धि हो रही थी। प्रवेशद्वार पर नागरी लिपि में राधा-स्मारक शब्द अंकित थे और ऊपर अँग्रेजी में लिखा था राधा मेमोरियल।

जब अभय ने पत्थर के मन्दिर की एक ओर संस्कृत में अंकित 'हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे' देखा, तब वे राधेलाल मल्लिक की ओर मुड़े और दृढ़ शब्दों में बोले— "भगवान् ने यह भवन मेरे लिए बनाया है।" उस क्षण से अभय उस भवन को प्राप्त करने के लिए कृत-संकल्प हो गये।

श्रीमान् मल्लिक ने बताया कि वह मन्दिर सन् १९३९ में सम्पन्न वैष्णव भू-स्वामी राधा भाई के स्मारक के रूप में बनवाया गया था, लेकिन इस समय उसका इस्तेमाल नहीं हो रहा है। डॉ. प्रभाकर मिश्र, जिनसे अभय कई अवसरों पर मिल चुके थे, उसके कुछ कमरों में रह रहे थे, अन्यथा वह वीरान पड़ा था। श्रीमान् मल्लिक और अभय ने डॉ. मिश्र को मुख्य भवन में उनके आवास से खोज निकाला और जब डॉ. मिश्र ने अभय का उत्साह देखा, तो उन्होंने उन्हें अपने साथ वहाँ रहने के लिए आमंत्रित किया। डॉ. मिश्र ने इस बात की पुष्टि की कि रविवार को सवेरे गीताध्यापन की कक्षा के अतिरिक्त मन्दिर में उपलब्ध

सुविधाओं का उपयोग नहीं हो रहा था। उन्होंने अभय का स्वागत किया कि वे वहाँ अपने लिखने और प्रचार का कार्य करें।

अभय को विचार पसन्द आया। भूमि का सर्वेक्षण रुचिपूर्वक करते हुए वे तुरन्त इस विचार में लग गये कि भवनों का उपयोग किस प्रकार हो सकता है। एक दूसरे बड़े भवन में भी, जो पत्थर के खंभों और अग्रभाग से युक्त था, एक हाल और पाँच कमरे थे। अभय ने मन में हर कमरे के लिए योजना बनाई : इस कमरे में जहाँ बड़ी संख्या में लोग एकत्र हो सकते हैं, कीर्तन और भाषण होंगे; इस कमरे में भगवान् चैतन्य महाप्रभु का श्रीविग्रह होगा; इन कमरों में आवासी ब्रह्मचारी और संन्यासी रहेंगे; इसमें अतिथि और उस कमरे में कार्यालय होगा; इस कमरे में छपाई की मशीन रहेगी। एक गाय के चरने के लिए वहाँ चरागाह भी थी। मन्दिर अपने में स्वतंत्र इकाई था। कीर्तन, प्रसाद और प्रवचन के लिए उसमें सैकड़ों आदमी समा सकते थे। *बैक टु गॉडहेड* पत्रिका वितरित करने के लिए यहाँ से प्रचारक बाहर जा सकते थे। भगवान् चैतन्य की कृपा से कुछ को विदेश भी भेजा जा सकता था।

जब अभय अपने साथियों सहित अहाते में घूमकर इस बात की सराहना कर रहे थे कि आश्रम शुरू करने के लिए वह उपयुक्त स्थान था, तो उनके साथियों ने यह कहकर उनका उत्साह-वर्धन किया कि श्रीमान् रेवा शंकर भयल को, जो राधा भाई के वशंजों की सभी सम्पत्तियों के व्यवस्थापक थे, अभय के वहाँ रहने में कोई आपत्ति न होगी। अभय ने पूछा कि मकान-मालिक उन्हें सभी मकान क्यों नहीं दे सकते थे? वे बरबाद हो रहे थे। यदि सचमुच उन्हें राधा का स्मारक होना था, तो उनका उपयोग कृष्ण की सेवा में होना चाहिए, क्योंकि कृष्ण राधा के पूज्य भगवान् थे।

अभय दृढ़-निश्चय थे, और उनके मित्र उनकी सहायता करने को राजी हो गये। पहले वे राम मित्र से मिले, जिन्होंने कहा कि भयल उनके इतने घनिष्ठ हैं कि उनकी प्रार्थना पर ही शायद वे वह जगह उन्हें दे देंगे। डॉ. शास्त्री भी भयल के पास इस बात पर जोर देने के लिए जाना चाहते थे कि झाँसी के लोग कितना अधिक चाहते हैं कि यह जगह अभय को मिल जाये।

जब रेवा शंकर भयल की भेंट अपने मित्र राम मित्र से हुई, तो उस अवसर पर अभय, डॉ. शास्त्री, राधेलाल मल्लिक, प्रभाकर मिश्र और झाँसी की एक शिक्षित युवती सूर्यमुखी शर्मा आदि लोग भी उपस्थित थे। उन्होंने मामले को कई दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया और भयल सब को सुनते रहे। वे सहमत हुए कि उस समय उस जगह का कोई उपयोग नहीं हो रहा था और प्रस्तावित उपयोग अच्छा प्रतीत हो रहा था। वे राजी हो गये कि अभय जब तक चाहें, उस स्थान की सुविधाओं का उपयोग अपने भक्त-संघ के लिए कर सकते हैं।

और अभय की प्रार्थना पर वे संघ का सदस्य बनने पर सहमत हो गये। दोनों ने हाथ मिलाए। मालिक की ओर से भयल ने भारती भवन की सम्पत्तियों को दान के रूप में अभय चरण दे और उनके भक्तों के संघ को दे दिया।

• • •

दिसम्बर और जनवरी में अभय ने भक्तों के संघ (लीग आफ डिवोटीज) का चार्टर तैयार किया। अपने आध्यात्मिक गुरु के उदाहरण का अनुसरण करते हुए वे जोरदार, व्यापक प्रचार आरम्भ करना चाहते थे। अपने लक्ष्यों को उन्होंने लिखित रूप देना आरम्भ ही किया था कि योजना का रूप तुरन्त फैलने लगा—झाँसी के बाहर, भारत के बाहर। निस्सन्देह, भक्त-संघ झाँसी के नवयुवकों के लिए था—वे उसमें बड़ी रुचि प्रदर्शित कर रहे थे—लेकिन अभय के चार्टर में संध्या की कक्षाओं और कीर्तन से अधिक का विधान था। यह एक विस्तृत योजना थी, जिसमें समाज के चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का समावेश था, जो अपने में एक विश्वव्यापी धार्मिक आन्दोलन की योजनाएँ लिए हुए थी। चार्टर में भावी सदस्यों के लिए एक परीक्षण-काल था। उसमें आध्यात्मिक दीक्षा का विधान था; उसमें संघ और सदस्यों के बीच आर्थिक आदान-प्रदान की व्यवस्था थी; उसमें प्रचारकों के लिए आवास का प्रबन्ध था और निषिद्ध कार्यकलापों का वर्णन था; जैसे स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध, मद-सेवन, विशुद्ध शाकाहारी भोजन के अतिरिक्त अन्य खाद्य-पदार्थों का ग्रहण, जुआ खेलना और अनावश्यक मनोरंजन या क्रीड़ा-उपक्रम।

लखनऊ में भक्त-संघ की रजिस्ट्री (पंजीकरण) के लिए संघ के सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित 'मेमोरंडम आफ एसोशिएशन' की जरूरत थी। इस मसौदे में, जिसमें समाज के उद्देश्यों का उल्लेख होना था, अभय ने अपने आध्यात्मिक गुरु के मिशन को जारी रखने का अपना मन्तव्य प्रकट किया। अपने गुरुभाइयों की भाँति, जिन्होंने गौड़ीय मठ के विघटन के पश्चात् अपने-अपने नये मठ स्थापित कर लिए थे, अभय गौड़ीय सम्प्रदाय की भक्त-संघ नाम से एक नई शाखा का निर्माण कर रहे थे। वे केवल कुछ मकानों के स्वामित्व का दावा नहीं कर रहे थे; वे एक कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना कर रहे थे, जिसका विस्तार विश्वव्यापी आन्दोलन के रूप में होना था। उनके इरादे बिल्कुल अनुदार नहीं थे, वरन् उनका लक्ष्य "संसार-भर में आध्यात्मिक विकास के केन्द्र स्थापित" करना था। अभय ने लिखा, "...भगवान् चैतन्य ने परम भगवान् तक पहुँचने की दिव्य प्रक्रिया का उद्घाटन किया, और उनकी शिक्षाओं में ऐसा कुछ नहीं है, जो मानव तर्क की दृष्टि से असंगत हो और सभ्य संसार द्वारा स्वीकृत किसी धर्म के विरुद्ध हो।" संघ के लक्ष्यों की गणना में उन्होंने सारे संसार में केन्द्रों की स्थापना को स्थान दिया। इस प्रकार वे संघ को

"एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में स्थापित करना चाहते थे, जो शिक्षा और संस्कृति के द्वारा तथा सभी राष्ट्रों, धर्मों और जातियों के लोगों से नये सदस्य भरती करके आध्यात्मिक विकास का कार्य करे।" संघ के कार्यों में बहुत सी भाषाओं में साहित्य और *बैक टु गॉडहेड* मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी था।

अभय ने अपने *मेमोरंडम आफ एसोशिएशन* पर आवश्यक हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए। फिर उन्होंने लखनऊ की गाड़ी पकड़ी और ४ फरवरी को पच्चास रुपये जमा कराकर अपना आवेदन-पत्र दाखिल कर दिया। उसके बाद वे झाँसी लौट आये।

• • •

राधा मेमोरियल में अपने कमरे में अभय नित्य चार बजे सवेरे उठ जाते और अपने युवा पड़ोसी प्रभाकर मिश्र को जगा देते। चार बजे से पाँच बजे तक अभय लिखने का कार्य करते; पाँच बजे से वे अंतिय ताल के क्षेत्र में भ्रमण करते; साढ़े पाँच बजे स्नान करते और तब सात बजे तक माला फेरते हुए हरे कृष्ण का मंत्रोच्चारण करते और उसके पश्चात् वे *श्रीचैतन्य-चरितामृत* या *श्रीमद्भागवत* पर शिक्षण करते (यद्यपि साधारणतः प्रभाकर मिश्र एकमात्र श्रोता होते)। आठ बजे वे अपने साहित्यिक कार्य में लग जाते; दस बजे के बाद तक वे टाइप में लगे रहते; तब भोजन तैयार करना शुरू कर देते। तीसरे पहर वे प्रायः झाँसी नगर का चक्कर लगाते; वे लोगों से मिलते और प्रचार-कार्य करते। उनकी निगाह बराबर ऐसे लोगों की खोज में लगी रहती, जो भक्त-संघ में सम्मिलित होने को तैयार हों। संध्या के समय वे सात बजे तक लिखने में लगे रहते। उसके बाद वे नगर के विभिन्न स्थानों में से किसी स्थान पर, जहाँ से निमंत्रण होता, कीर्तन करने और भाषण देने की तैयारी करते।

यद्यपि अभय के पास *बैक टु गॉडहेड* को जारी रखने के लिए पैसे नहीं थे, लेकिन उनके प्रचार-कार्य का एक निश्चित अंग लेख लिखना था, इस बात की चिन्ता न करते हुए कि वे तुरन्त प्रकाशित हो सकते हैं या नहीं। उन्होंने लगभग चौबीस हजार शब्दों का एक लम्बा लेख लिखा, जिसका शीर्षक था "भगवान् का सन्देश।" उन्होंने एक लेखमाला तैयार की, जिसमें *भगवद्गीता* की शिक्षाओं का, विशेषकर संसार की समस्याओं पर घटित होने वाली शिक्षाओं का आख्यान था। एक लेख 'भक्ति-विज्ञान,' रूप गोस्वामी के *भक्तिरसामृत-सिन्धु* के अध्ययन का सार-दोहन, था।

• • •

१६ मई १९५३ को अभय के भक्त-संघ का एक विराट उद्घाटन-समारोह किया

जिसमें पाठ, कीर्तन और प्रसाद-वितरण का कार्यक्रम प्रात:काल से लेकर आधी रात तक लगातार चलता रहा। भवनों को फूल-पत्तियों और मिट्टी के कई कलशों से सजाया गया था। संध्या-समय, जब जन-समूह सबसे विशाल था, अभय ने *भगवद्गीता* के नवे अध्याय से *राजगुह्ययोग* पर व्याख्यान दिया। प्रभाकर मिश्र ने हवन कराया और कई ब्राह्मणों ने *ब्रह्म-संहिता* से मंत्र-पाठ किया। अतिथियों को सोलह पृष्ठों की एक विवरण-पत्रिका दी गई, जिसमें संघ की आवश्यकता पर अभय का एक लेख सम्मिलित था और उसके उद्देश्यों का वर्णन करने वाले चार्टर से एक उद्धरण दिया गया था; इस पर हस्ताक्षर थे—"ॐ...तत्...सत्... अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त, संस्थापक एवं सचिव।"

झाँसी की जनता के लिए संघ का उद्घाटन एक भव्य, शुभ घटना थी और अभय के व्याख्यान के लिए संध्या समय सैकड़ों की संख्या में लोग वहाँ एकत्रित हुए। डॉ. शर्मा, जो संघ के संस्थापक-सदस्य और झाँसी के एक दैनिक पत्र के सम्पादक थे, इस घटना का प्रचार अच्छी तरह कर चुके थे और अगले दिन प्रकाशनार्थ एक लेख तैयार कर रहे थे। *गौड़ीय पत्रिका* ने भी उद्घाटन पर रिपोर्ट प्रकाशित की।

> स्थानीय थियोसोफिकल सोसाइटी के सम्पादक, श्री लक्ष्मीनारायण राजपाली भी उपस्थित थे; यद्यपि उनके दार्शनिक विचार भक्तिवेदान्त प्रभु से भिन्न हैं, उनकी सहानुभूति इस आन्दोलन के साथ है। एकत्रित जन-समुदाय में बहुत से उल्लेखनीय व्यक्ति मौजूद थे। श्रीविग्रह का उद्घाटन और प्रतिष्ठापन शीघ्र सम्पन्न होगा। सभा राज्यपाल श्री के. एम. मुंशी से उद्घाटन समारोह संपन्न करने के लिए प्रार्थना करेगी।... केन्द्र का पंजीकरण सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट के अनुसार करा लिया गया है। संघ के भवन का नाम श्री भारती भवन है, जिसमें एक व्याख्यान-कक्ष है और एक मन्दिर है, जो राजभवन के समान है। सभा के पास केन्द्र में करने योग्य कई कार्यक्रम हैं और सदस्यों के लिए वहाँ आवास की भी सुविधाएँ हैं।

अभय को विश्वास हो गया कि भारती भवन अब भक्त-संघ के केन्द्र के रूप में स्थापित हो जाएगा और इसे मान्यता मिल जायगी। उन्हें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि उद्घाटन का दिन मात्र उनका निजी मामला नहीं था, वरन् एक ऐसी घटना थी, जिसमें झाँसी के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति शामिल हुए।

• • •

उनका विगत जीवन दिन-दिन उनसे दूर होता प्रतीत हो रहा था। लेकिन उनके झाँसी

आने के लगभग छह महीने बाद उन्हें एक तार मिला, जिससे उनके पिछले सम्बन्ध अचानक याद हो आये। इलाहाबाद में उनका व्यवसाय चोरी का शिकार हो गया था। उनके नौकर उनके सारे पैसे, दवाइयाँ और कीमती वस्तुएँ चुरा ले गये थे। पूरी हानि सात हजार रुपए की थी। अभय ने समाचार पढ़ा, वे हँसे और उनके मुख से भागवत का यह श्लोक निकल पड़ा :

यस्याहं अनुगृह्णामि
हरिष्ये तद्-धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजत्यस्य
स्वजना दुःख दुःखितम्॥

प्रभाकर मिश्र ने अभय को इलाहाबाद जाकर जो कुछ मिल सके, उसे प्राप्त करने की राय दी। अभय ने कहा, "नहीं, मेरे लिए यह अच्छा हुआ। मैं दुखी था, लेकिन एक बड़ी आसक्ति का अब अन्त हो गया है और मेरा जीवन श्री श्रीराधा-माधव के प्रति पूर्णतः समर्पित है।"

अभय के लड़के, वृन्दावन, शीघ्र ही झाँसी पहुँचे। उन्होंने अभय से प्रार्थना की कि कलकत्ता जाकर वे 'अभयचरण दे एंड संस' नाम से व्यवसाय को पुनर्जीवित करें। राधा मेमोरियल में अभय के कमरे में बैठे जब वे बात करने लगे, तो अभय ने स्पष्ट किया कि वे कलकत्ता नहीं जा सकते। उन्होंने वृन्दावन से आग्रह किया कि वे रुकें और टाइप के काम में उनकी सहायता करें। लेकिन वृन्दावन कलकत्ता लौट गये।

• • •

प्रभाकर से मिलने के पहले दिन से ही अभय उनसे, जो आयु में अभय से छोटे थे, आग्रह कर रहे थे कि वे पूर्णकालिक सहायक के रूप में भक्त-संघ में भाग लें। विश्वविद्यालय में प्रवक्ता और मेडिकल आफिसर होने के नाते यद्यपि प्रभाकर की कई जिम्मेदारियाँ थीं, फिर भी वे जितनी हो सकती थी, अभय की मदद करते थे; शीघ्र ही वे अभय के सबसे अधिक क्रियाशील सहायक बन गये। अभय ने उन्हें लीग का सचिव नियुक्त किया और कई महीने बाद उन्हें दीक्षा दी। इस प्रकार अभय प्रभाकर के आध्यात्मिक गुरु बने और प्रभाकर अभय के पहले शिष्य हुए। प्रचारक होने के नाते शिष्य स्वीकार करना उन्हें हरे कृष्ण का मंत्र देना और अपने आध्यात्मिक गुरु से प्राप्त आदेशों की तरह उन्हें अपनी गुरु-परम्परा के आदेश देना, अभय का कर्तव्य था। किन्तु प्रभाकर पूर्णतः समर्पित शिष्य नहीं थे; इसलिए वे शिष्य की अपेक्षा सहायक के रूप में अधिक स्वतंत्र रहे। विश्वविद्यालय के प्राचार्य, संस्कृत के विद्वान और मेडिकल आफिसर के रूप

में वे अपने निजी हितों का पालन करते रहे।

श्रील प्रभुपाद : *उस भक्त-संघ में मैं अकेला था। उसमें कुछ विद्यार्थी थे, लेकिन वे उतने क्रियाशील नहीं थे। मुझे ही सबकुछ करना पड़ता था। प्रभाकर मिश्र और अन्य लोगों के सहयोग से मैं संघ को संगठित करना चाहता था, लेकिन अपना पूरा समय देने में उनकी रुचि नहीं थी। यदि मैं उनसे पूरा समय देने को कहता, तो वे वैसा नहीं करते थे। किन्तु उनकी दिक्षा हो चुकी थी। वे संस्कृत के विद्वान, चिकित्सा-अधिकारी थे।*

इस प्रकार जब गौड़ीय पत्रिका में उद्घाटन-समारोह का विवरण प्रकाशित हुआ, तो उसमें प्रभाकर का उल्लेख बड़े सम्मानजनक शब्दों में दिया गया—भक्त संघ में अभय के भागीदार के रूप में, यद्यपि वे वास्तव में भक्तिवेदान्त द्वारा दीक्षित शिष्य थे।

> भक्तिवेदान्त प्रभु ने सम्मानीय आचार्य श्रीमद् प्रभाकर मिश्र शास्त्री, काव्य, व्याकरण, वेदान्त तीर्थ, बी. आई. एस, एम. एस. ए. की सेवाओं का यज्ञ के लिए आवाहन किया। वे एक महाविद्यालय के प्राचार्य हैं, जिसमें वेदों और वेदांगों की शिक्षा दी जाती है और उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। वे भक्त-संघ के सहायक प्रबन्धक भी हैं।

समय और परिस्थितियों के अनुसार अभय इस युवक को भक्ति में लगाते थे। उनकी रुचि शिष्य इकठ्ठा करने में उतनी नहीं थी, जितनी भक्त-संघ स्थापित करने में। और उसके लिए उन्हें सहायकों की जरूरत थी।

प्रभाकर मिश्र : *मैं जब पहली बार स्वामीजी से मिला तो उन्होंने मुझे कहा, "तुम एक ब्राह्मण हो और प्रभाकर हो, फिर भी तुम होटल में खा रहे हो? तुम मेरे साथ आ जाओ—मै स्वयं तुम्हे खिलाऊँगा और मैं भोजन बनाऊँगा।" अस्तु, हम प्रसाद बनाते और भगवान् को अर्पण करने के बाद उसे एक साथ ग्रहण करते। इस प्रकार उनके अनुग्रह से मुझे प्रसाद प्राप्त करने का अवसर मिला। उन्होंने मुझसे यह भी कहा, "तुम केश-हीन हो जाओ।" इसलिए मैं मुंडित-मस्तक होकर कालेज गया जहाँ मैं पढ़ाता था और हर एक मुझ पर हँसने लगा। जब मैंने स्वामीजी को परिस्थिति बताई, तो वे बोले, "चूँकि तुम मेडिकल आफिसर हो, इसलिए तुम बाल बढ़ा सकते हो।"*

जब मैंने दीक्षा ग्रहण की, तो स्वामीजी ने मेरा नाम आचार्य प्रभाकर रखा। मेरा मूल नाम प्रभाकर मिश्र था, इसलिए उन्होंने कहा, "तुम मिश्र मत लिखो, तुम आचार्य प्रभाकर हो।" उन्होंने मुझे यह नाम दिया और एक तुलसीमाला दी और मेरे माथे पर तिलक लगाया और मेरे गले में कंठी-माला पहनाई। उन्होंने भक्त-संघ की स्थापना की रजिस्ट्री

करा ली थी और सारे संसार में प्रचार के लिए मुझे उसका सचिव बनाया। हम गाँवों में संकीर्तन और भगवद्गीता-कथा के लिए लगातार जाया करते थे।

• • •

अभय ने झाँसी में संकीर्तन आन्दोलन चलाया। पहले वे केवल आचार्य प्रभाकर के साथ नयबस्ती के इर्द-गिर्द हरे कृष्ण का कीर्तन करते हुए घूमा करते थे। जैसे जैसे उन्होंने यह अभ्यास जारी रखा, उनका दल धीरे-धीरे बढ़ने लगा, जब तक कि उनके दल में नियमित रूप से परिक्रमा पर जाने, हरे कृष्ण का कीर्तन करने और मन्दिरों में दर्शनार्थ जाने के लिए पचास लोग नहीं हो गये। बाद में वे शाम के व्याख्यान के लिए राधा मेमोरियल में इकट्ठे होने लगे।

जब अभय आसपास के गाँवों में प्रचार के लिए जाते, तो लीग के जो लोग भी स्वतंत्र होते, उनका प्रायः साथ देते थे। एक बार वे आचार्य प्रभाकर के साथ झाँसी से कोई बीस मील दूर चिरगाँव की पद-यात्रा पर प्रचार के लिए गये। चिरगाँव में सारे राष्ट्र में विख्यात कवि मैथिलीशरण गुप्त रहते थे; उन्होंने अभय और उनके शिष्यों को भोजन के लिए अपने घर पर आमन्त्रित किया। अभय ने गुप्तजी से कहा कि चूँकि वे एक सिद्ध कवि थे, इसलिए उन्हें कृष्ण की महिमा का बखान करते हुए कुछ लिखना चाहिए, और कवि इसके लिए राजी हो गये। चिरगाँव में प्रचार करने के बाद अभय और प्रभाकर झाँसी लौट आये। उन्होंने मार्ग के पाँच गाँवों में से हर एक में एक एक दिन बिताया। रात में गाँव वाले एकत्र होते थे और अभय कीर्तन का नेतृत्व करते थे। उन्होंने प्रभाकर को बताया कि यद्यपि ये सीधे-सादे ग्रामीण *भगवद्गीता* और *भागवत्* के विद्वान नहीं थे, लेकिन वे सर्वोच्च आध्यात्मिक लाभ कीर्तन मात्र से प्राप्त कर सकते थे। अभय का गाँव वालों ने अच्छा स्वागत किया और उन्होंने उनसे शीघ्र ही पुनः आने की प्रार्थना की। लेकिन दूसरी बार आने के पहले उन्हें सूचना जरूर मिलनी चाहिए, ताकि वे उनके समुचित स्वागत की तैयारी कर सकें।

झाँसी में प्रचार करने के साथ ही अभय अपने भक्त-संघ को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र बनाने के लिए दत्त-चित्त थे। अपनी सच्ची शैक्षिक योजना के विस्तार में सहायता देने के लिए वे सरकारी एजेंसियों को लिखते और अपने मित्रों में से प्रचार के लिए सदस्य भरती करने की भी कोशिश करते। उन्होंने कलकत्ता के अपने पुराने सहपाठी रूपेन मित्र को लिखा और उन्हें विश्वव्यापी प्रचार-कार्य में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया।

मेरे मिशन की इच्छा चालीस प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण देने की है... और

मैंने सरकार को इस लाभप्रद शैक्षिक उद्देश्य में सहायता देने को लिखा है। मैं चाहता हूँ कि तुम इसके एक प्रशिक्षणार्थी बनो और कार्तिक दादा को भी इसी भाव से हमारे साथ आने को कहो। जो कागजात तुम्हारे पास भेजे गये हैं उनसे तुम जान सकते हो कि हम कैसे रहते हैं और क्या करते हैं और इस प्रकार तुम निर्णय कर सकते हो कि तुम हम लोगों के साथ आ सकते हो या नहीं। पहली चीज यह है कि हम कुछ अवकाश-प्राप्त लोगों को वानप्रस्थ जीवन में प्रशिक्षित करना चाहते हैं और कुछ युवकों को ब्रह्मचर्य जीवन में। संन्यस्त जीवन के लिए मेरे मन में कोई रुचि नहीं है; वर्तमान युग के पतित लोगों के लिए यह कठिन कार्य है। गेरुए परिधान में तथाकथित संन्यासियों ने जीवन के इस आश्रम की कीर्ति नष्ट कर दी हैं। [अभय ने रूपेन को यह भी लिखा,] कृपा करके यह भी बताइए कि कलकत्ता के अंग्रेजी और देशी भाषाओं के समाचार-पत्रों में विज्ञापन को छपाने का क्या व्यय होगा।

शैक्षिक विज्ञापन

"आवश्यकता है—किसी भी राष्ट्रीयता के ऐसे अभ्यर्थियों की, जो विश्वभर में *भगवद्गीता* की शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए योग्य ब्राह्मण सिद्ध हो सकें। उपयुक्त अभ्यर्थियों के लिए आवास और भोजन की व्यवस्था निःशुल्क उपलब्ध है। आवेदन करें : ए. सी. भक्तिवेदान्त, संस्थापक और सचिव, लीग आफ डिवोटीज (भक्त संघ), भारती भवन, पी. ओ. झाँसी, (यू. पी.)"

• • •

अभय एक ऐसा दस्तावेज चाहते थे, जिसमें उल्लेख हो कि भारती भवन भक्त-संघ (लीग आफ डिवोटीज) की सम्पत्ति है। अभी तक उनके पास केवल एक वायदा था। झाँसी को स्थायी मुख्यालय बनाने के विचार से वे एक लिखित प्रतिबद्धता चाहते थे। जब वे 'दान-पत्र' के लिए रेवाशंकर भयल के पास गये थे, तो श्रीमान् भयल ने उन्हें एक प्रपत्र दिया था और प्रार्थना की थी कि भवनों की रजिस्ट्री के लिए वे पाँच सौ रुपए अदा करें। किन्तु चूँकि अभय को अभी इलाहाबाद में सात हजार रुपए की हानि हुई थी और हाल ही में उन्होंने तीन हजार रुपए प्रचार पर व्यय किये थे (जिस का अधिकतर भाग उद्घाटन-

समारोह में लगा था), इसलिए उन्होंने पाँच सौ रुपए भी इकठ्ठा करने में अपने को असमर्थ पाया। ऊँचे शैक्षिक पद पर आसीन होते हुए भी आचार्य प्रभाकर के पास बहुत कम पैसे थे। उनकी सहायता के लिए उनके माँ-बाप प्रतिदिन उन्हें तीन रुपए देते थे। अभय के समुदाय की, विशेषकर विद्यार्थियों की स्थिति भी वैसी ही थी। श्रीमान् भयल की पाँच सौ रुपए के लिए प्रार्थना अत्यावश्यक नहीं लगती थी, न ही उन्होंने यह बताया कि यदि अभय पैसे न दे सके तो क्या होगा। लेकिन शीघ्र ही उन्होंने एक दूसरी प्रार्थना रखी : अभय चरण दे को पाँच हजार रुपए में भारती भवन खरीद लेना चाहिए।

यह बात घबरा देने वाली थी; उदार दान खरीद के प्रस्ताव में वदल गया था। नगर के लोग उस सम्पत्ति को अभय भक्तिवेदान्त के आश्रम के नाम से पुकारने लग गये थे और अहाते की दीवार पर बड़े अक्षरों में लीग आफ डिवोटीज छापा जा चुका था। जब अभय के मित्रों ने जोर डाला तो श्रीमान् भयल ने उन्हें विश्वास दिलाया कि अभय वहाँ रहना जारी रख सकते है, परन्तु अन्त में भवन उन्हें खरीदना पड़ेगा। श्रीमान् भयल ने कहा कि वे लीग आफ डिवोटीज को पहला नम्बर देंगे और उससे कम कीमत लेंगे।

अभय को चिन्ता हुई; वे नहीं जानते थे कि मकान-मालिक आगे क्या करेंगे। यदि लीग जायदाद खरीद सकती, तो वह सबसे अच्छा होता। लेकिन वे पाँच सौ रुपये भी नहीं जुटा पाए थे; पाँच हजार जुटाना तो असम्भव प्रतीत होता था। अभय को अपने समुदाय से आर्थिक सहायता नहीं मिली; उनकी लीग में एक भी पूर्णकालिक सदस्य नहीं था।

धन जुटाने का उनके पास एक उपाय था : उनका दवाइयों का धंधा। कलकत्ता में उनके लड़के अब भी छोटे पैमाने पर कार्य कर रहे थे। पहले अभय हर महीने तीन हजार रुपये कमाते थे। सहायता के लिए गुरुभाइयों से मांगने का विचार उनके मन में आया, किन्तु स्वयं धन कमाने की प्रत्याशा उन्हें अधिक सम्भव जँची। तीस वर्ष तक उन्होंने अपने दवाइयों के व्यवसाय से धन कमाया था, वे उसे फिर कर सकते थे—सर्वाधिक उपयुक्त उद्देश्य के लिए।

• • •

जब वे १९५४ ई. की वसंत ऋतु में कलकत्ता पहुँचे, तो उनके पास पैसे नहीं थे। उन्होंने अपने गुरु भाइयों के साथ चेतला में गौड़ीय संघ में रहने का निश्चय किया। पड़ोस में ही उनका परिवार भी रहता था। चूँकि उनके पास पैसे नहीं थे, इसलिए आश्रम के प्रधान उनका व्यय वहन करते रहे। अभय नित्य *श्रीमद्भागवत* पर प्रवचन देते, जिसे गौड़ीय संघ के ब्रह्मचारियों ने बहुत पसन्द किया।

कृष्ण कुमार ब्रह्मचारी : *उनके जाने के बाद भी उनकी मधुर संगीतमय वाणी मेरे*

कानों में गूँजती रहती। वे प्राय: विदेश जाने और प्रचार करने की इच्छा व्यक्त किया करते थे।

उनके एक लड़के छोटा-मोटा व्यवसाय 'विमलटोन लैबोरेटरी' नाम से करते थे और उसकी आय से परिवार का व्यय चलाते थे। अभय जानते थे कि उनकी पत्नी को उनके झाँसी के कार्य में कोई रुचि नहीं होगी; उनके लड़के वहाँ गये थे, लेकिन उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ था। उनके झाँसी में प्रचार-कार्य को उनका परिवार अपने घरेलू जीवन के लिए एक खतरा समझता था। किन्तु अभय कृष्णभावनामृत से सुधरे संसार की अपनी दिव्य दृष्टि के बल पर चल रहे थे, जो अब व्यावहारिक रूप ले रही थी। वे कलकत्ता में भी लीग आफ डिवोटीज की एक शाखा खोलने की बात सोचते थे।

किन्तु परिवार की जिम्मेदारियों में उन्हें अनिवार्य रूप से फिर डूब जाना पड़ा : उनकी कुछ संतानों का विवाह अब भी नहीं हुआ था; किराए और अन्य बिलों का भुगतान करना था। वे विमलटोन लैबोरेटरी का विस्तार भी करें, तो जो कुछ वे कमाएँगे वह परिवार के पोषण के लिए चाहिए था और यदि वे परिवार की माँगों को स्वीकार करें और घर पर रहें और प्रचार-कार्य छोड़ दें, तो भी सबसे बड़ी कठिनाई रह ही जायेगी : भक्ति के लिए उन लोगों में गम्भीर आकर्षण नहीं था। वे उन्हें बदल भी नहीं सकते थे। व्यवसाय चलाने का लाभ क्या, यदि वे भक्ति नहीं करते?

वे परिवार में गये और वही पुराना दृश्य फिर घटित हुआ। स्थानीय मित्र उनसे मिलने आये और अभय प्रवचन करने लगे और झाँसी की तरह *भगवद्गीता* पर कक्षाएं लेने लगे। उस बीच उनकी पत्नी और परिवार के अन्य लोग अलग कमरे में चाय पीते।

श्रील प्रभुपाद : *जितना हो सकता था, मैंने प्रयत्न किया कि वह मेरे साथ कृष्णभावनामृत के प्रसार के लिए कार्य करके मेरी सहायता करे। लेकिन वह बहुत ही कृत-संकल्प थी। कृष्णभावनामृत के प्रसार में उससे मुझे सहायता नहीं मिलती थी। अतएव अन्त में बहुत वर्षों के बाद मैंने समझ लिया कि वह मेरी सहायक नहीं होगी।*

चाय पीने में उसे बड़ी आसक्ति थी। मैं उससे बराबर कहता कि वह चाय न पिए, क्योंकि मैं एक बहुत बढ़िया वैष्णव परिवार चाहता था। इसलिए, यद्यपि मैं उससे बार-बार कहता आया था, इस बार मैंने उससे अन्तिम बार कहा, "तुम्हें मेरे और चाय के बीच एक को चुनना है। या तो चाय जायेगी या मैं।" इस तरह मैं अपने परिवार की भी आलोचना किया करता था। लेकिन वे मुझे पति या पिता समझते थे, इसलिए मेरे आदेशों का गम्भीरता से पालन न करते। पत्नी ने उत्तर दिया, "चाय पीना छोड़ूँ या पति को छोड़ूँ; अच्छा तो मुझे अपने पति को छोड़ना पड़ेगा।" निश्चय ही, वह समझ रही थी कि मैं हँसी कर रहा था।

एक दिन राधारानी ने बड़ी भूल की। उस समय की विनिमय की प्रथा के अनुसार ग्राहक तराजू के एक पलड़े पर वह वस्तु रखता था, जिसे दुकानदार कीमती समझता था और दूसरे पलड़े पर सौदा रखकर उसके बराबर तोल देता था। सो, एक दिन जब अभय बाहर गये हुए थे, उनकी पत्नी उनका आराध्य *भागवतम्* बाजार ले गई और बदले में चाय-बिस्कुट ले आई। जब अभय वापस आये और पुस्तक की खोज करने लगे, तो राधारानी ने जो हुआ, वह बता दिया। उन्होंने उसे कोई गम्भीर मामला नहीं समझा था—उनके पास चाय-बिस्कुट खतम हो गये थे—लेकिन अभय को बड़ा धक्का पहुँचा। पहले तो वे उदास हो गये, तदनन्तर उनके मन में दृढ़ निश्चय कौंध गया। उनका पारिवारिक जीवन समाप्त हो गया।

जब उन्होंने बताया कि वे जा रहे हैं, तब उन लोगों की समझ में नहीं आया कि उनका आशय क्या था। वे विगत तीस वर्षों से जा रहे थे। वे हमेशा जाते-आते रहते थे। जब वे दरवाजे से बाहर हुए तो उन लोगों ने सोचा, "वे फिर जा रहे हैं। वे घर से जा रहे हैं।" यह तो सामान्य कार्यक्रम था। हर एक देख सकता था; पड़ोसियों ने भी देखा कि श्रीमान् दे फिर जा रहे हैं। वे घर आये थे, अब वे जा रहे हैं। वे फिर आयेंगे। लेकिन अभय जानते थे कि वे फिर कभी नहीं आयेंगे।

श्रील प्रभुपाद : *परिवार छोड़ने के पहले मैं अपने सभी लड़कों और लड़कियों का विवाह कर देना चाहता था, लेकिन उनमें से कुछ राजी नहीं हुए। लेकिन तब... समय समाप्त हो गया है। कोई चिन्ता नहीं कि उनका विवाह हुआ है या नहीं। अपनी चिन्ता वे स्वयं करें। मान लें कि मैं अभी मर जाता हूँ, तो मेरी लड़की की देख-भाल कौन करेगा? उस समय हम कहते हैं, "ईश्वर देख-भाल करेंगे।" तो अभी क्यों नहीं? ईश्वर रक्षा करेंगे। मेरे गुरु महाराज कहा करते थे कि (पारिवारिक जीवन का त्याग) "सामाजिक रूप से आत्महत्या" है। यदि आप आत्महत्या करते हैं, तो वह दण्डनीय अपराध है। लेकिन (पारिवारिक जीवन का त्याग करना) स्वेच्छा से आत्महत्या है—"अब मैं मृत हूँ। आप जो चाहें, करें।"*

कृष्ण कहते हैं—सर्वधर्मान् परित्यज्य—सभी धर्मों को छोड़ दो। परिवार गृह धर्म है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, उसे छोड़ दो। पर उससे आसक्ति तो है ही। और यदि हम कहें कि आसक्ति का त्याग शनैः शनैः करना है तो हम ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि आसक्ति बनी रहेगी। यदि यह कहा जाए कि मेरे तुरन्त मर जाने पर भगवान् मेरे परिवार की रक्षा करेंगे, तो वे अभी क्यों नहीं करते?

अभय के आध्यात्मिक आवेश इतने उग्र थे कि वे झाँसी जाने की नहीं सोच रहे थे। वे ट्रेन पकड़कर 'कहीं भी' जाना चाहते थे। तब उन्हें अपने कुछ पुराने गुरुभाई याद आये,

जो कलकत्ता से थोड़ी दूर दक्षिण की ट्रेन यात्रा के फासले पर झारग्राम में एक आश्रम में रहते थे। इसलिए उन्होंने एक मित्र से दस रुपए उधार लिए और झारग्राम का टिकट खरीद लिया।

वह एक छोटा-सा मठ था। जब अभय वहाँ पहुँचे, तो परमहंस महाराज, दामोदर महाराज और दूसरों ने उनका स्वागत किया। परमहंस महाराज उस समय उपस्थित थे, जब अभय पहली बार भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से मिले थे और उन्हें याद था कि उस समय सफेद खादी के वस्त्र पहने एक गाँधीवादी 'अराजकतावादी' के रूप में अभय कैसे दिखे थे। अभय ने उन्हें बताया कि, "मैं अपने परिवार की आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सका।" इसलिए अब मुझे महाप्रभु चैतन्य के सन्देश का प्रचार करने दीजिए।" अभय ने उन्हें बताया कि उनका व्यवसाय किस प्रकार नष्ट हो गया और उन्होंने स्वेच्छा से परिवार कैसे छोड़ दिया और वे इस समय एक कंगाल थे।

परमहंस महाराज : *जब अभय पहुँचे, तो वे बहुत गरीब लग रहे थे, जैसे भूख से मर रहे हों। उनके पास कोई साधन नहीं था। वे मठ में अकेले आये, और जब वे पंहुँचे, तो वे केवल हरे कृष्ण रट रहे थे, अन्य कुछ नहीं।*

झारग्राम में अभय अपना समय पवित्र नामोच्चार में और परिवार से विराग के कारण अपने मन को स्थिर करने में बिताते रहे। कई दिन तक वे लगभग लगातार जप में लगे रहे। परमहंस महाराज संध्या-समय व्याख्यान देते थे और तब अभय भी *भगवद्गीता* पर बोलते थे। लेकिन समय बीतने के साथ उनका ध्यान फिर झाँसी पर गया, और जल्दी ही वे भक्त-संघ में जाने को तैयार हो गये। उन्हें भवन प्राप्त करने थे और प्रचार जारी रखना था।

किन्तु झाँसी लौटने के पूर्व उन्होंने भगवान् चैतन्य की एक विशाल प्रतिमा प्राप्त की। उसे वे भारती भवन में स्थापित करना चाहते थे। यह कैसी विडंबना है कि वे कलकत्ता व्यवसाय करने और धन कमाने गये थे, लेकिन उनके पास अब न धन था, न व्यवसाय और न कोई पारिवारिक उत्तरदायित्व। उनका विवाह छत्तीस वर्ष पहले हुआ था और अब अट्ठावन वर्ष की अवस्था में वे पूरे वानप्रस्थी बन गये थे। अब वे अपना जीवन पूरी तरह से कृष्णभावनामृत के प्रचार में लगा सकते थे।

• • •

अभय ने वानप्रस्थ का गेरुआ परिधान नहीं अपनाया, वरन् सफेद धोती और कुर्ता पहनना जारी रखा। जब वे डेढ़ साल पहले झाँसी में पहुँचे थे, तभी से वहाँ के लोग उन्हें विना परिवार वाले एक प्रचारक के रूप में जानते थे। अब वे भगवान् चैतन्य की श्रीमूर्ति के साथ झाँसी लौट रहे थे और इस संकल्प के साथ कि वे झाँसी में भगवान् चैतन्य का

एक मन्दिर स्थापित करेंगे। अभय का आचार्य प्रभाकर और अन्य लोगों ने हार्दिक स्वागत किया। किन्तु राधा मेमोरियल को प्राप्त करने में उन्हें प्रतियोगिता का भी सामना करना पड़ा।

इसका आरम्भ बुंदेलखंड संस्कृत सम्मेलन से हुआ, जिसमें उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के. एम. मुंशी और उनकी पत्नी लीलावती का आगमन हुआ था। लीलावती मुंशी एक सक्रिय सामाजिक संगठनकर्त्री थीं। उन्होंने महिला समिति-संघ की कई शाखाएँ स्थापित की थीं। संघ का उद्देश्य स्त्रियों को कार्यालयों में लिखने पढ़ने का काम सिखाकर और अँग्रेजी पढ़ाकर सामाजिक दृष्टि से उनका उत्थान करना था। झाँसी की दो शिक्षित महिलाएँ, चन्द्रमुखी और सूर्यमुखी, झाँसी में स्त्रियों के लिए एक ऐसा ही सामाजिक कार्यक्रम चाहती थीं और अवसर का लाभ उठाकर वे लीलावती मुंशी के झाँसी आने पर उनके पास गईं। लीलावती ने उन्हें प्रोत्साहित किया और वे इस चर्चा में लग गईं कि झाँसी में कौन सा स्थान है, जहाँ महिला-समिति की एक शाखा खोली जा सकती है। एक महिला ने सुझाव दिया कि शायद भारती भवन का उपयोग इसके लिए किया जा सकता है। यद्यपि सूर्यमुखी शर्मा उन महिलाओं में से थीं, जिनकी सहानुभूति आचार्य अभय चरण दे के साथ थी और जो उनकी ओर से श्रीमान् भयल के पास पहले गई थीं और जिसने सुझाव दिया था कि भारती भवन भक्त-संघ के लिए उन्हें दे दिया जाये, लेकिन अब उन्हें लगा कि महिलाओं का पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण है—और वे यह भी जानती थीं कि भवन का सौदा अभी तय नहीं हुआ है। महिलाओं में सहमति हो गई कि भारती भवन महिला समिति संघ की शाखा के लिए सर्वोत्तम स्थान होगा और आचार्य अभय की अपेक्षा यह कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण था।

राज्यपाल की पत्नी से समर्थन निश्चित हो जाने पर सूर्यमुखी ए. सी. भक्तिवेदान्त से मिलीं। उन्होंने कहा कि उनके विश्वव्यापी वैष्णव-संघ का गठन कभी नहीं हो सकता। अभय एक अच्छे व्यक्ति थे और सूर्यमुखी को वे पसन्द थे, लेकिन उनका विचार था कि अभय अपनी असाधारण आशाओं को पूरा नहीं कर सकते। उन्होंने सुझाव दिया कि भारती भवन को अभय खाली कर दें, ताकि राज्यपाल की पत्नी उसमें महिला-समिति का एक केन्द्र स्थापित कर सकें। उन्होंने कहा, "मन्दिर के निमार्ण के लिए आप यहाँ-वहाँ, कहीं भी जा सकते हैं। आप स्वतंत्र हैं; जहाँ चाहें वहाँ जाँए; लेकिन झाँसी की इन गरीब स्त्रियों के पास कुछ नहीं है, इसलिए इन भवनों को इस्तेमाल के लिए उन्हें दे देना चाहिए।" सूर्यमुखी ने देखा कि अभय को इस पर घोर आपत्ति थी।

अभय ने कहा, "नहीं, कोई दूसरा भवन खोज लीजिए।" उन्होंने तर्क दिया कि उनका कार्य केवल एक वर्ग के लिए नहीं, वरन् समस्त प्राणियों के लिए था। सूर्यमुखी

निराश होकर लौट गईं। अभय को आश्चर्य हुआ कि भक्त-संघ की एक सदस्या अब उसके विरुद्ध कार्य कर रही थीं।—और इस चाल को समर्थन दे रही थीं राज्यपाल की पत्नी!

श्रीमती मुंशी और भी प्रभावशाली धरातल पर कार्य कर सकती थीं, अभय का प्रत्यक्ष सामना किये बिना ही, या बिना उनके जाने कि वे क्या कर रही हैं। श्रीमान् भयल से उनकी वार्ता होने के बाद यह खबर फैल गई कि श्रीमान् भयल पर जोर डाला गया है कि वे अभय को मना ले कि भारती भवन पर से वे अपना दावा छोड़ दें। श्रीमान् भयल का झाँसी में एक सिनेमा हाउस था और यह चर्चा सुनाई देने लगी कि उसको चलाने के लिए लाइसेंस प्राप्त करने में उन्हें बड़ी कठिनाई होगी, यदि अभय राधा मेमोरियल को खाली नहीं कर देते।

दिसम्बर १९५४ ई. में श्रीमती मुंशी ने अभय को इस बात का हवाला देते हुए लिखा कि पाँच हजार रुपए इकट्ठा करने में अभय को सफलता नहीं हुई। उन्होंने लिखा, "प्रिय भक्तिवेदान्तजी, आप वहाँ संगठन स्थापित करना चाहते थे, लेकिन आप ऐसा नहीं कर सके। लेकिन मेरे पास महिला-समिति संगठन है। आप इसे मुझे क्यों नहीं दे देते?" अभय का विचार विरोध करने का था। उनके ऐसे वकील-मित्र थे, जिन्होंने उन्हें राय दी कि यद्यपि उनका विरोध राज्यपाल के परिवार की ओर से हो रहा था, तथापि उनका केस इतना अच्छा था कि न्यायालय में उसकी विजय निश्चित थी; धार्मिक भवनों के लिए सम्मान की भारतीय परम्परा उनके पक्ष में थी।

अभय ने लीग आफ डिवोटीज के संस्थापक के रूप में अपना परिचय देते हुए श्रीमती मुंशी को उत्तर दिया। उन्होंने लीग के उद्देश्य का पूरा वर्णन किया, उसकी विवरण पत्रिका की एक प्रति संलग्न की और बहुत से विख्यात व्यक्तियों के वक्तव्य प्रस्तुत किये, जिनमें लीग आफ डिवोटीज के आश्चर्यजनक कार्य की प्रशंसा की गई थी। इन व्यक्तियों के नाम थे—डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, श्री सीताराम, राजा महेन्द्र प्रताप और स्वयं श्रीमती मुंशी के पति के. एम. मुंशी। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि लीग के अध्यक्ष को हाल में ही मथुरा में स्वयं महामहिम राज्यपाल के. एम. मुंशी से एक सौ रुपए का अनुदान प्राप्त हुआ था। अभय ने आगे लिखा कि झाँसी में यद्यपि काम धीमे चल रहा था, लेकिन वह शान्त ढंग से चल रहा था और अब श्रीमती मुंशी द्वारा आरम्भ की गई बातचीत से उनका मन बहुत उद्विग्न हो उठा था। उन्होंने श्रीमती मुंशी से प्रार्थना की कि वे भारती भवन के सम्बन्ध में किसी से उन पर जोर न डलवाएँ, यद्यपि उन्होंने स्वीकार किया कि, "यदि आप या आपका कोई एजेंट प्रयत्न करता है, तो वह दबाव अपेक्षया भारी होगा... इस तुलना में तो मैं कुछ भी नहीं हूँ।"

अभय को आशा थी लीग का जो विवरण वे प्रस्तुत कर रहे थे, उससे श्रीमती मुंशी की समझ में आ जायेगा कि लीग का पक्ष महिला-समिति के पक्ष से मजबूत था। उन्होंने

भगवद्गीता के चौथे अध्याय के पहले तीन श्लोकों को उद्धृत किया, जिसमें श्रीकृष्ण ने बताया है कि भक्तियोग का प्राचीन विज्ञान गुरु-परम्परा से प्राप्त किया जाता है और राजाओं का यह दायित्त्व है कि वे देखे कि प्रजा के कल्याण के लिए कृष्णभावनामृत का प्रसार हो। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि चूँकि *भगवद्गीता* के अनुसार लाखों में से कुछ लोग ही आत्मसिद्धि के लिए प्रयास करते हैं और चूँकि लीग आफ डिवोटीज अपने सदस्यों को आत्म-सिद्धि में लगाती है, इसलिए वे बहुत महत्त्वपूर्ण और विरल सेवा कर रहे हैं। उन्होंने उस क्षेत्र के पन्द्रह संन्यासियों के साथ श्रीमती मुंशी से मिलने की अपनी तत्परता प्रकट की और यह सुझाव दिया कि वे उन लोगों के साथ सहयोग से कार्य करें और लीग के महत्त्व को समझें। लीग आफ डिवोटीज से सभी वर्गों का भला हो रहा था। जैसाकि श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* में कहा है, "निम्न जन्म का व्यक्ति भी परम भगवान् की शरण में जा सकता है।" अभय ने संकेत किया कि महिला-समिति तो जाति, धर्म, रंग और लिंग-भेद पर आधारित थी; इसलिए उसका पक्ष उतना महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता था। अभय ने पत्र इस प्रार्थना के साथ बन्द किया कि श्रीमती मुंशी राधा मेमोरियल को हथियाने का प्रयत्न न करें, जिसका उपयोग पहले से ही बहुत उदात्त और बहु-प्रशंसित कार्य के लिए हो रहा था। उन्होंने हस्ताक्षर किये : "ए. सी. भक्तिवेदान्त, संस्थापक एवं सचिव लीग आफ डिवोटीज (भक्त-संघ)।"

अभय इस बात से अवगत थे कि वे एक षड्यंत्र में फँस गये हैं, इसलिए उन्होंने अपने विचारों को व्यवस्थित किया और भारती भवन पर अपने अधिकार से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संक्षिप्त विवरण देकर एक "लघु इतिहास" लिख डाला।

लघु इतिहास

१. मैं झाँसी में अक्तूबर १९५२ ई. में आया।

२. मैंने गीता मन्दिर में कुछ व्याख्यान १९५२ ई. में गाँधी जयंती के दिन दिए।

३. प्रभाकर शास्त्री से परिचय किया।

४. लीग आफ डिवोटीज का मेरा विचार कार्यान्वित हुआ।

५. वे मुझे भारती भवन के लिए रेवाशंकर के पास ले गये।

६. प्रभाकर, मित्राजी और मेरी उपस्थिति में श्री रेवाशंकर भारती भवन को लीग आफ डिवोटीज के निमित्त देने को और उसका सदस्य बनने को सहमत हुए।

७. मैं इसकी पुष्टि करने के लिए इलाहाबाद से पत्र लिखता हूँ।

८. उन्होंने मेरे पत्र की पुष्टि १०.१२.५२ को की।

९. प्रभाकर ने १.१.५३ को रेवाशंकर की इच्छा से अवगत कराया।

१०. लीग आफ डिवोटीज के लिए अपेक्षित दस्तावेज मैंने प्राप्त किया और उस पर सदस्यों के हस्ताक्षर के लिए मैं झाँसी आया। रेवाशंकर ने हस्ताक्षर किये और वे कार्यकारी सदस्य बनने को राजी हुए।

११. दस्तावेज ४.२.५३ को लखनऊ में रजिस्ट्रेशन (पंजीकरण) के लिए प्रस्तुत किया गया और वह १०.१०.५३ को वापस मिला।

१२. लीग आफ डिवोटीज की विधिवत् स्थापना १६.५.५३ को और कार्य आरम्भ हुआ। अस्तु, उस दिन से भवन मेरे अधिकार में है और मेरा कार्य जारी है।

अभय इस तरह तीस क्रमांक तक गिनाते गये जिनमें समाचार पत्रों में प्रचार और उन्हें प्राप्त बधाई के पत्र शामिल थे। उन्होंने उस कहानी का वर्णन किया कि "अपने व्यवसाय और परिवार का बलिदान करके" वे कैसे झाँसी गये थे। "मुझे इलाहाबाद से एक तार मिला, जिसमें ताला तोड़कर मेरे घर में चोरी का समाचार था। यहाँ के कार्य की वजह से मैं अपना व्यवसाय नहीं देख सका और बाद में वह सात हजार का घाटा सहकर बन्द कर दिया गया।"

अभय का ध्यान सहायता के लिए अपने कुछ संन्यासी गुरुभाइयों पर गया। यदि अभय या उनके गुरुभाई भवनों को खरीद सकते तो उनके प्रतिद्वन्द्वियों की जबान बन्द हो जाती। उन्हें यह सार्थक लगा कि अपने गुरुभाइयों को तैयार करें कि अपने मिशनों के अनुलग्न के रूप में वे इन भवनों को खरीद लें।

वृन्दावन दूर नहीं था—मथुरा तक चार-घंटे की ट्रेन यात्रा थी, उसके बाद कुछ दूर टांगे की सवारी। वे १९५३ ई. के अक्तूबर में वहाँ तीर्थयात्रा पर गये थे और केशीघाट के निकट एक मन्दिर में उपलब्ध एक कमरा भी देखा था, इस विचार से कि वहाँ अन्य कभी रहा जा सकता है। झाँसी में रहना आरम्भ करने के बाद वे वहाँ अन्य कई बार हो आये थे। इस बार वे इमलीतल मन्दिर में अपने गुरुभाई भक्तिसारंग गोस्वामी से मिलने और यह पूछने गये कि क्या वे भारती भवन का स्वामित्व ग्रहण करने को तैयार हैं जिससे उसे, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की शिक्षाओं के अनुसार कृष्णभावनामृत का प्रसार करने के लिए उपयोग में लाया जा सके। लेकिन भक्तिसारंग गोस्वामी को उसमें कोई रुचि नहीं थी। तब वे एक अन्य गुरुभाई दामोदर महाराज के पास गये, किन्तु उन्होंने भी झांसी में कोई रुचि नहीं दिखाई। अत: अभय तांगे की सवारी करके वे फिर मथुरा पहुँचे, एक अन्य गुरुभाई, केशव महाराज से मिलने। केशव महाराज अपनी शिष्य मण्डली के साथ मथुरा में थे, जहाँ वे एक केन्द्र स्थापित करना चाहते थे। लेकिन अभी तक उन्हें कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिला था। इसलिए जब अभय ने उन्हें झाँसी के भवनों के बारे में बताया, तो उन्होंने रुचि

दिखाई। अभय और केशव महाराज ने मिलकर एक पत्र श्रीमान् भयल को लिखा, जिसमें उन्होंने अपनी प्रार्थना उनके सामने रखी और अपने आन्दोलन के उद्देश्य बताए। उसके बाद अभय और केशव महाराज तथा उनके शिष्य एक साथ झाँसी की यात्रा पर रवाना हुए।

केशव महाराज अपने दल के साथ कीर्तन करते हुए और व्याख्यान देते हुए कई दिन झाँसी में टिके रहे। रेवाशंकर भयल से उनके मिलने की बात निश्चित थी, लेकिन श्रीमान् भयल ने इस का पालन नहीं किया, इसलिए उनसे किसी और दिन मिलने के लिए उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी। इस बीच केशव महाराज को समय मिल गया कि वे झाँसी के बारे में अपनी राय कायम करें और उसे अपना मुख्यालय बनाने की सम्भावना पर अभय से विचार-विमर्श करें। उन्होंने देखा कि लोग ग्रहणशील थे, लेकिन स्थान बहुत दूर था। श्रीमान् भयल से मिलने के पहले ही केशव महाराज झाँसी में मुख्यालय बनाने में हिचकिचाने लगे। अभय सहमत हुए; वे जानते थे कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने कहा था कि एक प्रचारक को बड़े नगरों में जाना चाहिए, न कि एकान्त में भजन करना चाहिए। और अभय ने स्वीकार किया कि झाँसी में दो वर्ष बिताने के बाद भी वे कोई भी पूर्णकालिक अनुयायी नहीं बना सके थे।

अन्त में जब वे श्रीमान् भयल से मिले, तो श्रीमान् भयल जायदाद खरीदने की स्पष्ट शर्तें उनके सामने नहीं रख सके। उन्होंने कहा कि वे जायदाद खरीदने के योग्य हैं, लेकिन उनके द्वारा भवनों का उपयोग प्रतिबन्धित होगा : जो कार्यक्रम वे वहाँ करना चाहेंगे, उनमें उनका दखल होगा। अभय जान गये कि यह सन्दिग्ध सौदेबाजी का एक और लक्षण था, और उन्हें सन्देह होने लगा कि श्रीमान् भयल पर अधिकाधिक दबाव डाला जा रहा है कि वे भवनों को महिला-समिति को दे दें। केशव महाराज को भवनों में कोई रुचि नहीं रह गई थी। उन्होंने मथुरा लौट जाने का निर्णय लिया और अभय को वहाँ अपने साथ रहने को आमंत्रित किया।

लेकिन अभय भारती भवन में रुके रहे। श्रीमान् भयल उन्हें निकालना चाहते थे और उन्होंने उनके दो सौ दस रुपए भी लौटा दिए, यह दावा करते हुए कि अब भारती भवन में रहने का अभय के पास कोई न्याय-संगत औचित्य नहीं रह गया था। अभय ने अपने "लघु इतिहास" में नवीनतम घटनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया।

२९. उन्होंने मेरे द्वारा जमा किये धन के एवज में मुझे २१० रुपए का चेक दिया है, लेकिन बैंक में उनके खाते में पैसे नहीं हैं। बैंक ने इस टिप्पणी के साथ चेक लौटा दिया है।

३०. जो धन मैंने उन्हें दिया था... उसका उन्होंने अपने निजी काम के लिए दुरुपयोग

किया है और अब बैंक से मिलकर उन्होंने मुझे झूठा चेक दिया है।

३१. यह मेरे साथ आदि से लेकर अन्त तक स्पष्ट धोखा है।

३२. मैं भवनों को छोड़ूँ, इसके पहले मेरी पूरी आर्थिक क्षतिपूर्ति की जाये।

किन्तु अभय ने इसे कृष्ण की अबोधगम्य इच्छा के रूप में देखा। घटनाएँ और सम्मतियाँ उन्हें झाँसी में मिशन कायम करने के विरुद्ध बना रही थीं। वहाँ मिशन स्थापित करना शुभ नहीं प्रतीत हो रहा था।

श्रील प्रभुपाद : *मैं वहाँ से अपना कार्य आरम्भ करना चाहता था। वह अच्छा बड़ा मकान था। वह मुझे उचित ढंग से नहीं दिया गया था, लेकिन मैं उसका उपयोग कर रहा था। इसलिए किसी तरह उनके मन में आया कि मकान बहुत अच्छा है। वे राज्यपाल की पत्नी थीं। कलक्टर और सरकार के अधिकारियों द्वारा उन्होंने दबाव डलवाया। निश्चय ही, मेरे बहुत से वकील-मित्र थे। उन्होंने मुझे राय दी, "आप मकान न छोड़ें।" लेकिन मैंने सोचा, "मुकदमा कौन लड़ेगा?" मुझे विचार आया, "मैंने अपना घर छोड़ दिया है, और अब क्या मुझे मुकदमा लड़ना चाहिए? नहीं, मुझे यह मकान नहीं चाहिए।"*

अभय को याद आया कि गौड़ीय मठ के प्रचारक किस तरह अदालतों में वर्षों अपनी शक्ति का अपव्यय कर चुके थे। परिवार और व्यवसाय की लम्बी उलझनों का अन्त कर देने के बाद उनके मन में कानूनी लड़ाई की इच्छा नहीं रह गई थी। वे लड़ सकते थे, लेकिन उन्हें याद आया कि केशव महाराज ने कहा था कि झाँसी बहुत दूर, अलग-थलग है। निस्सन्देह, ऐसी परिस्थिति वहाँ अचानक ही पैदा हो गई थी; अन्यथा अभय अपनी विश्वव्यापी लीग को ऐसे अनजाने स्थान में स्थापित करने की बात कभी न सोचते। वहाँ के शिक्षित युवकों और युवतियों की शुभ-इच्छाएँ उनके साथ थीं, ठीक वैसे ही जैसे उनकी शुभ-इच्छाएँ महिला-समिति, थियोसोफिकल सोसाइटी, आर्य समाज एवं अन्य ऐसी कई संस्थाओं के साथ थीं। लेकिन उनकी सद्-भावनाओं में निश्चित रूप से शुद्ध आत्म समर्पण और भक्ति का अभाव था; उनके एकमात्र शिष्य भी उन्हें केवल आंशिक सहायता दे सके थे। लेकिन ये सारी चीजें उन्हें स्थान से निकालने के लिए पर्याप्त नहीं थीं। वास्तविक बात यह थी कि वे निकाले जा रहे थे।

श्रील प्रभुपाद : *यदि मैं न छोड़ता, तो मुझे कोई निकाल नहीं सकता था। यह एक वास्तविकता थी। लेकिन मैंने सोचा—इन चीजों के बारे में मुकदमा कौन लड़ेगा? दूसरी ओर राज्यपाल की पत्नी है और वे कलक्टर के माध्यम से दबाव डाल रही हैं। मैनेजर के पास, जो जायदाद की देखभाल कर रहे हैं, अपना कोई सिनेमा घर है। उसे उसका लाइसेंस नया करवाना है। और कलक्टर ने दबाव डाला कि यदि आप यह मकान नहीं*

दिलवाते, तो हम आपका लाइसेंस नया नहीं करेंगे। मैंने सोचा, व्यर्थ ही यह आदमी झंझट में पड़ेगा। मुझे कई सौ रुपए देने होंगे, और वह राज्यपाल की पत्नी है।

उन्होंने छोड़ देने का निश्चय किया। अपने मित्रों से उन्होंने कहा कि वे उनकी अनुपस्थिति में लीग आफ डिवोटीज का संचालन करते रहें। उनके जाने से वे उदास थे, लेकिन उनके कुछ मित्रों ने महिला-समिति के कार्यों की खुलकर प्रशंसा की और वे खुश थे कि उसकी शाखा स्थापित हो रही है। वे अभय की आर्थिक सहायता नहीं कर सके थे, यद्यपि वे जानते थे कि अभय अपने बूते पर भवनों को नहीं खरीद सकते थे।

अभय के घनिष्ठ अनुयायी उनके जाने से अधिक दुखी थे, लेकिन अभय ने उन्हें विश्वास दिलाया कि उनके सम्बन्ध कायम रहेंगे। वे आचार्य प्रभाकर, राधेलाल मल्लिक, श्रीमान् मित्र, डॉ. शास्त्री आदि को पत्र लिखते रहेंगे और उन्होंने उन लोगों को निर्देश दिया कि उन्हें क्या करना है। विशेषकर आचार्य प्रभाकर से अभय ने कहा कि वे उन्हें बुलाते रहेंगे और आशा व्यक्त की कि यद्यपि झाँसी को लीग का मुख्यालय नहीं बनाया जा सका, तो भी प्रभाकर उसके सचिव के रूप में कार्य करते रहेंगे। फिर भी यह स्पष्ट था एक विश्व-संस्था बनाने की महत्त्वाकांक्षापूर्ण योजनाओं का यह अध्याय समाप्त हो गया था। घर-घर, गाँव-गाँव जाना, संकीर्तन करना, गीता पर व्याख्यान देना, प्रसाद वितरण करना—सब समाप्त हो गया था। इसकी सम्भावना नहीं रह गई थी कि अभय झाँसी फिर कभी आयेंगे या झाँसी के लोग फिर कभी उनसे मिल सकेंगे।

जब अभय ने भारती भवन छोड़ा, जिसकी बाहरी दीवार पर छह फुट ऊँचे मोटे अक्षरों में "लीग आफ डिवोटीज" अंकित था, तो वे उदास हुए। वहाँ उन्हें सहज, अपने-आप सफलता मिली थी। वे झाँसी के शिक्षित युवा-वर्ग के लोगों के शुरु से ही मार्गदर्शक बन गये थे और यह षड्यंत्र न रचा गया होता, तो वे वहाँ से कभी न जाते। किन्तु उन्हें लगा कि उनकी कोई वास्तविक पसन्द नहीं है। वे वहाँ एक परिवार के कर्ता के रूप में व्यवसाय के लिए गये थे और बिना सरके एक वानप्रस्थी के रूप में उसे छोड़ रहे थे, कृष्ण की शरण में जाने को मजबूर। उनकी योजनाएँ अनिश्चित थीं, लेकिन उनकी इच्छा बलवती थी और स्वास्थ्य अच्छा था। अस्तु, वे मथुरा पहुँचे, अपने साथ भगवान् चैतन्य की श्रीमूर्ति लिए हुए। ●